
इकाई 3 कबीर का काव्य

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 कबीर का व्यक्तित्व और रचना संचार
- 3.3 भक्तिकाल और कबीर
- 3.4 कबीर की भक्ति
- 3.5 कबीर की सामाजिक चेतना
- 3.6 कबीर की भाषा और काव्य सौंदर्य
- 3.7 कबीर के काव्य का वाचन और आस्वादन
- 3.8 सारांश
- 3.9 शब्दावली
- 3.10 उपयोगी पुस्तकें
- 3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

‘कबीर का काव्य’ आपके पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- कबीर के जीवन और उनकी रचनाओं से अवगत हो पाएँगे ;

- भक्तिकाव्य के संदर्भ में कबीर की विशिष्टताओं को रेखांकित कर पाएँगे ;
- कबीर की सामाजिक चेतना की जानकारी दे पाएँगे; तथा
- उनकी भाषागत विशिष्टताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

कबीर हिंदी भक्तिकाव्य के प्रारंभिक कवियों में है। उन्होंने ईश्वर के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए अपनी भक्ति का विकास किया। कबीर जिस समय में हुए उस दौर में समाज की तथाकथित निम्न जातियों को साधना का अधिकार नहीं था। कबीर ने ऐसी किसी बंदिश को मानने से इंकार कर दिया और साथ ही कर्मकांड को महत्व देने वाली उपासना पद्धति से अपनी असहमति जताई। उन्होंने योग तथा प्रेम को महत्व दिया। ऐसा माना जाता है कि उन्हें किसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं मिल पाई थी। इस कमी की पूर्ति उन्होंने सत्संग एवं यात्राओं के माध्यम से की। इसने उनकी अभिव्यक्ति को प्रभावित किया और उनकी भाषा में विभिन्न क्षेत्रीय प्रभाव आए। कबीर की साधना बहुत कुछ अंतर्मुखी है इस कारण उनमें रहस्यत्माकता की भी प्रवृत्ति है। आगे इन सबके बारे में आपको विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

3.2 कबीर का व्यक्तित्व और रचना संसार

मध्ययुगीन हिंदी भक्ति साहित्य में कबीर सबसे पहले आते हैं। रचनाकाल की दृष्टि से भी और पूरे समाज को प्रभावित करने की दृष्टि से भी। कबीर के व्यक्तित्व को समझने के लिए उस युग की उथल-पुथल को समझना आवश्यक है। कबीर राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक संक्रमण की व्यापक और गंभीर सरणियों का परिणाम थे। एक ओर राजनैतिक दृष्टि से इस्लाम का शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था, तो दूसरी ओर समाज ऊँच-नीच

के बंधनों में जकड़ा हुआ था। इस्लाम धर्म के रूप में समता के सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत कर रहा था, तो इस्लाम के आने से स्थापत्य, निर्माण, व्यापार में बढ़ोत्तरी हुई। इस बढ़ोत्तरी ने निम्न समझी जाने वाली जातियों को (जो मुख्य रूप से कामगार जातियाँ थीं) में थोड़ी आर्थिक संपन्नता उत्पन्न की। इन दोनों संदर्भों ने— सैद्धांतिक एकता और अपेक्षाकृत बहुत कम ही सही, आर्थिक उन्नति ने समाज की विभिन्न जातियों और समुदायों के बीच भक्ति को एक अधिकार के रूप में प्रस्तुत किया। यह भी स्वीकृत मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही मनुष्य अधिकारों की बात करता है।

आज की आधुनिक शब्दावली में बात कही जाए, तो भक्ति मध्ययुग का लोकतांत्रिक अधिकार ठहरती है, क्योंकि मध्ययुग में मनुष्य का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी। मोक्ष ईश्वर के चरम तादात्म्य से प्राप्त होता था। ईश्वर का चरम तादात्म्य भक्ति द्वारा संभव था। चूँकि समाज में जब से वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित हुई थी, तब से भक्ति पर सवर्णों का अधिकार था। मध्यकाल में नई सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में जब कबीरदास आदि भक्त कवि भक्ति को अधिकार के रूप में देखते हैं, तो यह शताब्दियों की वर्णक्रम व्यवस्था को गंभीर चुनौती थी।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कबीरदास' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है, "कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी। उन दिनों उत्तर के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अंतर था। एक टूट जाता था पर झुकता न था, दूसरा झुक जाता था पर टूटता न था।" इसी धार्मिक राजनैतिक सामाजिक वातावरण में कबीरदास का उद्भव होता है। इस संक्रमणशील समय और उसकी विभिन्न वृत्तियों से ही कबीरदास का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। इसीलिए कबीर के व्यक्तित्व में मैदानी भाग में बहने वाली नदी की कलकलता नहीं है, अपितु पहाड़ों में बहने वाली नदी का निनाद है। कबीरदास

के व्यक्तित्व में अगर योगियों की अक्खड़ता है तो वैष्णव भक्तों की तल्लीनता भी। अगर उनमें जाति और धर्म की विसंगतियों पर गंभीर व्यंग्य है, तो ईश्वर को पा लेने की चरम उत्कंठा भी है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी इसी पुस्तक में बताया है, “कबीरदास ने यह अक्खड़ता योगियों से विरासत में पाई थी। संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करुणा के अश्रु से वह कातर नहीं हो आते थे, बल्कि और भी कठोर होकर उसे फटकार बताते थे।” वे योगियों से अक्खड़ता पाते हैं तो उन्हें चुनौती भी देते हैं। मेरुदंड पर दुलैचा डालकर समाधि लगाने वाले को वे कच्चा योगी कहते हैं :

मेरुदंड पर डारि दुलैचा जोगी तारी लावैं।

सो सुमेर की खाक उड़ैगी कच्चा योग कमावैं।।

योगियों पर कबीर के इस तरह के प्रहार अनेक स्थलों पर हैं। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि भले हृदय में भगवत् भक्ति न हो तो शरीर की साधना कहाँ तक साथ देगी :

जरि गौ कंथा धज गौ टूटी। भजि गौ डंडे खपर गौ फूटी।

कहहिं कबीर इ कली हैं खोटी जो रहे करवा सौ निक टोटी।।

परंतु इस अक्खड़ता को उनका फकीराना व्यवहार स्थानापन्न करता है। वे किसी भी व्यवहार के साथ ताउम्र नहीं रहे, चाहे वह जितना भी खराब या अच्छा क्यों न हो। इसका मूल कारण यह रहा होगा कि वे सत्संग आदि के माध्यम से अपना निरंतर परिष्कार करते चलते हैं। अपने इसी स्वभाव के कारण वे कह पाते हैं :

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।

अब घर जारों तासु का, जो चलै हमारे साथ ।

कबीर के व्यक्तित्व को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन शब्दों में रेखांकित किया है, "ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला; स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़; भक्त के सामने निरीह, वेशधारी के आगे प्रचंड; दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय।"

जीवन-वृत्त

कबीरदास के जीवन-चरित्र के संबंध में अत्यंत सीमित जानकारी प्राप्त होती है। कबीरदास के जीवन के संदर्भ में जिन लोगों ने भी लिखा है, वह सब श्रुतियों पर आधारित है। यहाँ तक कि उनके जन्म और मृत्यु संबंधी हमारी जानकारी भी आधिकारिक या प्रमाण पुष्ट नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इनका जन्म वर्ष अलग-अलग बताया है। पर इतना निश्चित है कि ये पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विद्यमान थे। कबीरपंथियों में इनके जन्म को लेकर यह पद प्रचलित है :

चौदह सो पचपन साल गए, चंदवार एक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।

घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरषें झर लाग गए।

लहर तलाब में कमल खिलें तहँ कबीर भानु प्रगट हुए।

यह पद कबीरदास के शिष्य धर्मदास का बताया जाता है। कहा जाता है कि कबीरदास का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ। इनकी माता ने इन्हें तालाब के किनारे छोड़ दिया था और एक मुस्लिम दंपति नीरू और नीमा ने इनका लालन-पालन किया। यह परिवार जुलाहा जाति से संबंधित था। कबीर के जुलाहा होने की पुष्टि उनके निम्न पद से भी होती है :

जाति जुलाहा मति को धीर। हरसि हरसि गुन रमै कबीर।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह जुलाहा परिवार हाल ही में मुसलमान हुआ था। साथ ही वे यह भी बताते हैं, “कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को “ना-हिंदू ना-मुसलमान कहते रहे।” कबीरदास ने कोई परंपरागत शिक्षा ग्रहण की होगी, इसकी गुंजाइश कम ही दिखाई पड़ती है। जनश्रुति में वे निरक्षर ही माने जाते हैं। कबीर ने स्वयं भी कहा है :

मसि कागद छूयो नहिं, कलम गहि नहिं हाथ।

चारिउ जुग की महातम, मुखहिं जनाई बात।।

इसके बावजूद रामानंद को उनका गुरु स्वीकार किया जाता है। उपर्युक्त पद को अभिधा में लेने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि कबीर की व्यावहारिक शिक्षा सघन थी। उन्होंने सत्संग किया। सभी के पास कुछ सीखने की ललक से गए – क्या योगी, क्या नाथ, क्या वैष्णव! कहा जाता है कि उन्होंने लंबी-लंबी यात्राएँ कीं। इन यात्राओं के दौरान उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि होती रही।

कबीर के साथ प्रायः लोई का नाम लिया जाता है। कुछ लोग लोई को कबीर की पत्नी तथा कुछ अन्य लोग उसे इनकी शिष्या बताते हैं। यह भी बताया जाता है कि लोई से कबीर के कमाल और कमाली नाम के पुत्र-पुत्री हुए। कबीर ने लोई को संबोधित करके कई पद कहे हैं। एक पद में वे कबीर और लोई के एक घर होने की बात कहते हैं :

रे या मैं क्या मेरा तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा।

कहत कबीर सुनहु हे लोई, हम तुम विनति रहेगा सोई।

कबीरदास राजनीतिक काल के हिसाब से सिकंदर लोदी के युग में हुए। बताया जाता है कि अपने विचार और व्यवहार के कारण वे राजसत्ता के कोप के भाजन भी हुए। इनकी मृत्यु के संबंध में भी कोई निश्चित राय नहीं है। कुछ विद्वान – श्यामसुंदर दास और रामचंद्र शुक्ल आदि – इनकी मृत्यु 1518 ई. में मानते हैं परंतु पीतांबरदत्त बड़थवाल 1448 ई. में ही इनकी मृत्यु बताते हैं।

कबीर की रचनाएँ

आप यह जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि कबीरदास को अक्षर ज्ञान नहीं था। कबीरदास की रचनाओं को उनके शिष्यों ने संगृहीत किया। परंतु कबीरदास के नाम पर प्रचलित ग्रंथों की प्रामाणिकता सदैव संदिग्ध रही है। विश्वनाथ सिंह जूदेव ने तो यहाँ तक कहा है कि कबीर के जीवनकाल में ही उनके बहुत से जाली-ग्रंथ बन गए थे। कबीरदास के कुछ पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी मिलते हैं।

कबीर साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य 1903 ई. में एच.एच. विल्सन ने शुरू की। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथ मिले। इसके बाद बिशप जी. एच. वेस्टकॉट ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची प्रकाशित की। रामदास गौड़ लिखित 'हिंदूत्व' नामक ग्रंथ में 71 पुस्तकें, तो मिश्र बंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में 75 पुस्तकें बताई हैं। इसी प्रकार हरिऔध जी ने 'कबीर वचनावली' में 21, रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी का अलोचनात्मक इतिहास' में 61 ग्रंथों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में 140 ग्रंथों की सूची मिलती है। इन ग्रंथों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ हैं, इनकी प्रामाणिकता पर गहराई से विचार नहीं किया गया है।

आधुनिक समय में श्यामसुंदर दास ने 'कबीर ग्रंथावली', डा. रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर', अयोध्याप्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'कबीर वचनावली', डा. पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर-ग्रंथावली' आदि नामों से कबीर की रचनाओं का संपादन किया है। हिंदी के अतिरिक्त बंगला में रवींद्रनाथ टैगोर ने भी कबीर के पदों का चयन प्रस्तुत किया है। क्षितिमोहन सेन ने भी 'कबीर के पद' संपादित किए हैं।

कबीरदास की रचनाएँ 'बीजक' नाम से संगृहीत हुईं। 'बीजक' का अर्थ है – गुरुधन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है :

बीजक बित्त बतावई, जो बित्त गुप्ता होय।

सबद बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय।

बीजक संबंधी उपर्युक्त पद का अर्थ है— जो वित्त या गुरु धन होता है, उसका ज्ञान केवल बीजक से लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्त धन को अर्थात् उसके वास्तविक स्वरूप को

शब्द रूपी बीजक बताते हैं। कबीर का साहित्य साखी, सबद और रमैनी के रूप में उपलब्ध है। कबीर ने बीजक में सृष्टि, माया, जीव, मोक्ष, आदि से संबंधित, भव-पंथ के कष्टों, सत्यानुभव, सत्संग महिमा, संसार की असारता, सदगुरु महिमा, भक्ति आदि का विशद विवेचन किया है। दर्शन के साथ काव्य का सुंदर सामंजस्य कबीर की रचनाओं की अन्यतम विशेषता है।

बीजक के तीन भाग साखी, सबद, रमैनी हैं। इनके अर्थ को जान लेना आवश्यक है। प्रायः माना जाता है कि रमैनी में जगत व्यवहार, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म संबंधी विचार हैं। रमैनी चौपाई छंद में लिखी गई है। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी भी हैं जिनके अंत में एक-एक साखी है। इस संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है, "साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानो इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है।" रमैनी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है :

- (i) जिसमें संसार के जीवों के रमण का विवेचन है।
- (ii) वेद-शास्त्रों के विचारों में रमण करने वाली।
- (iii) एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं।

कबीर ने सबद का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है :

- (i) परमतत्व के अर्थ में
- (ii) पद के अर्थ में

साखी शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का तद्भव है। साखी अर्थात् साक्ष्य। अर्थात् साखी वह काव्य रूप है जिसमें प्रत्यक्ष जागतिक अनुभवों का वर्णन है। द्विवेदी जी ने साखियों को कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सर्वोत्तम साधन माना है।

बोध प्रश्न

1. कबीर के काव्य से संबंधित निम्नलिखित पुस्तकों तथा उनके संकलनकर्ता/ संपादक का सही युग्म तैयार कीजिए।

पुस्तक

- (क) कबीर के पद
- (ख) संत कबीर
- (ग) कबीर वचनावली
- (घ) कबीर ग्रंथावली

संकलनकर्ता/संपादक

- (i) डॉ. रामकुमार वर्मा
- (ii) क्षितिमोहन सेन
- (iii) डॉ. पारसनाथ तिवारी
- (iv) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

2. साखी, सबद और रमैनी का परिचय दीजिए। (उत्तर छः पंक्तियों में दीजिए)

.....

.....

.....

.....

3.3 भक्तिकाल और कबीर

भारत में भक्ति की परंपरा बहुत प्रचीन, विशद और गहरी रही है। इस परंपरा में ही हिंदी का भक्ति आंदोलन विद्यमान है। हिंदी भक्ति आंदोलन उत्तरी भारत में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक फैला है। इस काल में भक्ति समाज की विभिन्न सरणियों में फैल गई; जाति, धर्म, कुल की सीमाएँ लाँघकर। इस रूप में ही उसने एक जन आंदोलन का रूप लिया। इसीलिए रामविलास शर्मा जैसे विद्वान इसे 'लोकजागरण' की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार, "भारतेंदु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला दौर नहीं है, वह जनजागरण की पुरानी परंपरा का खास दौर है। जनजागरण की शुरुआत तब होती है जब वहाँ बोलचाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है, जब यहाँ विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक जातियों का गठन होता है।" इस सिद्धांत के अनुसार ही आधुनिक काल के जनजागरण को वे 'नवजागरण' और मध्यकालीन जनजागरण को 'लोकजागरण' कहते हैं। आधुनिक काल का जनजागरण साम्राज्यवाद विरोधी था, जबकि मध्यकालीन लोकजागरण सामंतवाद विरोधी।

इस रूप में विचार करें तो मध्ययुग का भक्तिकाल भक्ति की पारंपरिक अवधारणाओं तक खुद को सीमित नहीं रख सकता था। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत यह है कि भक्तिकाल में 'धर्म साधना का नहीं', भावना का विषय बन गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है। यहाँ यह विचार करना जरूरी है कि मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन का ऐतिहासिक आधार क्या है? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को इस्लामी आक्रमण से पराजित हिंदू जनता की मनः स्थिति से जोड़ा है। प्रश्न उठता है कि भक्ति

आंदोलन की शुरुआत दक्षिण से क्यों हो रही थी? दक्षिण से इसके शुरु होने की बात को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रेखांकित किया है, "भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर आ रहा था ...।" या "भक्ति आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिंदू मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भी भावना कुछ लोगों में जगाई।"

द्विवेदी जी ने इसे भारतीय चिंतन-धारा का स्वाभाविक विकास बताया। इन विद्वानों ने अपने तरीके से भक्ति आंदोलन को समझा। इनमें सत्य के अंश भी हैं। परंतु दक्षिण में भक्ति का जो उदय हो रहा था, वह जातिगत कठोरता के कारण। वास्तव में भक्ति आंदोलन सामंती व्यवहारों के विरुद्ध भारत का अपना जातीय संदर्भ है। इस तथ्य को समझने के लिए के. दामोदरन की इन पंक्तियों को देखना चाहिए, "ब्राह्मणवाद की मुख्य शिक्षा थी— अर्वैयक्तिक, शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान ब्रह्म में विश्वास करो। किंतु ब्राह्मणवाद केवल दर्शन मात्र नहीं था। दार्शनिक विचारों को प्रतिपादित करने के साथ ही उसने आदिम सर्वात्मवादी विश्वासों और कर्मकांडों को पुनर्जीवित किया, उन्हें सुदृढ़ बनाया और धार्मिक मतवादों में परिवर्तित कर दिया।" ब्राह्मणवाद सामंती व्यवस्था की देन है। इसीलिए भक्ति आंदोलन आत्यंतिक रूप से सामंती व्यवस्था से टकराता है। भक्तिकाल के प्रारंभिक दौर में कबीरदास जैसे उग्र व्यक्तित्व का आना उस ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति जैसा है, जो सामंती-ब्राह्मणवादी मूल्यों और संस्थाओं के विरुद्ध मनुष्य की भावनात्मक स्वायत्तता के लिए अनिवार्य होती है।

कहै कबीर विचारि करि, जिनि कोई खोजै दूरि।

ध्यान धरौ मन सुद्ध करि, राम रहया भरपूरि ।।

कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोही चांम ।

जा या देह रहित है, सो है मिता रांम ।।

वस्तुतः जब कबीरदास निर्गुण भगवान का स्मरण करते हैं, तो वे भगवान के गुणमय शरीर को नहीं स्वीकारते। वास्तव में यह कबीर की मौलिक कल्पना नहीं है। इसके पूर्व भी निर्गुण रूप में ईश्वर की उपासना की जाती थी, उसका स्वरूप बताया गया है। परंतु वहाँ ईश्वर को बताने के लिए निषेधात्मक उपकरणों की सहायता ली जाती है। कबीर की मौलिकता यह है कि वे इस निर्गुण से केवल निषेधात्मक भाव ग्रहण नहीं करते, अपितु उसके स्वरूप को भी निषेधात्मकता की परिधि से बाहर खींच लाते हैं।

वस्तुतः वे ईश्वर को सत्, रज और तम गुणों से भी अतीत मानते हैं। कबीर के निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार सगुण देहवादियों की भाँति नहीं किया जा सकता। वास्तव में कबीर ने घट-घट में ईश्वर की सत्ता स्वीकार करके परमात्मा और जीवात्मा में एकत्व स्थापित किया है। उनके अनुसार यह एकत्व माया के कारण खंडित होता है। कबीर कहते हैं :

जल में कुंभ कुंभ में जल बाहर भीतर पानी ।

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तत कथो गियानी ।

अर्थात् माया के समाप्त होते ही परमात्मा-जीवात्मा की एकता स्थापित हो जाती है। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म को संबंधों में बाँधकर एक प्रकार से उसे अनुभवातीत होने से बचाया है। कभी पत्नी, कभी मित्र, कभी दास आदि अनेक संबंधों में बाँधकर कबीर ने 'गूँगे के गुड़' को कुछ

कथनीय भी बनाया है। इसी कारण कबीर के राम अव्यावहारिक और असामाजिक नहीं हो पाते।

रहस्य भावना

कबीर की भक्ति के संदर्भ में रहस्य भावना को समझना आवश्यक है। रहस्य का सामान्यार्थ है दुर्बोध तत्व और उस दुर्बोध तत्व से मनन द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है। कालांतर में रहस्यवाद परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा का पर्याय हो गई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, “चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद।” शुक्ल जी के इस कथन पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रहस्यवाद में चेतन के साथ विश्वचेतन की अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। रहस्यवाद में ‘अहम’ और ‘इदम’ का क्रमशः लोप होता जाता है। एकत्व भाव ही इसकी प्रथम और अंतिम शर्त है। डा. रामकुमार वर्मा ने भी कहा है कि ‘अद्वैत ही मानो रहस्यवाद का प्राण है।’ कबीर के ब्रह्म अद्भुत हैं और उनकी गति अगम है :

निरगुन राम जपहूँ रे भाई

अविगत की गति लखि न जाइ।

रहस्यवाद की चार विशेषताएँ मानी गई हैं— आध्यात्मिक प्रेमधारण का अबाध प्रवाह, जागरण का सातत्य, अनंत की ओर भावुकता के साथ हृदय की उन्मुक्तता, तथा अग्रसरण। कबीर की कविताओं में ये चारों विशेषताएँ मिलती हैं। कबीर की रहस्यात्मकता इसलिए भी गहरी

है, क्योंकि कबीर के सरोकार अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से हैं। वे असीम, अतंत, शून्य रूपी ईश्वर का सान्निध्य पाकर सारी व्यथा भूल जाते हैं :

हरि संगति शीतल भया, मिटा मोह की ताप।

निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप।।

कबीर रूप और सीमा की सहायता से उस शाश्वत, अरूप और असीम को देखते हैं, जो उनका चरम प्राप्य है। इसकी सहायता से 'मैं' और 'पर' का भेद समाप्त हो जाता है, द्वैत मिल जाता है। आत्मा परमात्मा के साथ नीरक्षीरवत संबंध स्थापित करती है :

जल में कुंभ कुंभ में जल बाहर भीतर पानी

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तत कथो गियानी।

विभिन्न भक्ति पंथों से संबंध

कुछ लोग आक्षेप लगाते हैं कि कबीरदास कभी अद्वैतवाद की ओर झुकते दीखते हैं और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुण भाव से ईश्वर को पुकारते हैं और कभी निर्गुण भाव से। वास्तव में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धांत नहीं था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका उचित प्रत्याख्यान किया और कहा कि यह "केवल अश्रद्धा प्रसूत है। ऐसी बातें वही लोग कहते हैं, जो शुरु में ही मान बैठते हैं कि कबीर एक अशिक्षित जुलाहे थे और उल्टी-सीधी अटपटी बानियों से साधारण जनता पर प्रभाव जमाना चाहते थे।" दूसरी बात यह है कि सत्संग के द्वारा उन्होंने सारा ज्ञान अर्जित किया है। जिस समय, जिस मत के लोगों से उनका सत्संग होता था, उसका कुछ प्रभाव उनकी वाणियों पर पड़ता भी था। परंतु शीघ्र ही

अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और विराट अनुभव से वे उस पंथ की असंगतियों और मनुष्य विरोधी भावनाओं को पकड़ लेते थे। इस तरह वे निरंतर संवाद करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। इस तरह विभिन्न पंथानुयायियों से उनका एक द्वंद्वात्मक संवाद का नाता जीवन भर बना रहा। इस द्वंद्वात्मक संवाद के बीच एक ही सत्य है कि उन्होंने 'त्रिगुणातीत', द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभाव विनिर्मुक्त, अलख, अगोचर' ईश्वर को 'निर्गुण राम' कह कर संबोधित किया।

बोध प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्तियों में दीजिए।

(क) भक्तिकाल को किस विद्वान ने लोकजागरण की संज्ञा दी है?

.....

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का कैसा रूप माना है?

.....

(ग) कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के संबंध को कैसा माना है?

.....

(घ) किस विद्वान ने अद्वैत को रहस्यवाद का प्राण माना है।

.....

3.4 कबीर की भक्ति

निर्गुण ईश्वर

कबीर उच्च कोटि के भक्त थे। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। कबीरदास की परम अनुरक्ति में शायद ही किसी को संदेह हो। परंतु उनकी आसक्ति ईश्वर के किसी सगुण साकार रूप पर न थी। वे ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप के उपासक थे। निर्गुण अर्थात् गुण रहित। यहाँ गुण भी प्रसंगतः विशिष्टार्थ को घ्वनित करता है। गुण अर्थात् शरीर का वाचक धर्म। तब कबीर का ईश्वर शरीर के वाचक धर्मों से परे है। कबीरदास कहते हैं कि उनका हरि सबसे परे है। वह अगुण और सगुण दोनों से परे है, अजर-अमर दोनों से अतीत है :

संतौ, धोखा कासूं कहिये।

गुन में निरगुन, निरगुन में गुन, बाट छाडि क्युँ कहिये।

अजर-अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।

नीति-स्वरूप-बरण नहिं जाके घटि-घटि रह्यौ समाई।

प्यंड-ब्रह्मंड कथै सब कोई वाके आदि अरु अंत न होई।

प्यंड ब्रह्मंड छांड़ि जे कहियै कहै कबीर हरि सोई ॥

इतना ही नहीं, वह भाव और अभाव से भी परे है। अर्थात् भाव और अभाव दोनों द्वारा उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता, वह दोनों से परे है :

कह्यां न उपजै उपजां नहीं जाणै भाव अभाव बिहूनां।

उदै अस्त जहाँ मति बुधि नहीं सहजि राम ल्यौ लीनां ॥

राम का स्वरूप

कबीर ने राम की उपासना की है। प्रश्न है कि कबीर के राम हैं कौन? कबीर को राम नाम का मंत्र गुरु रामानंद से प्राप्त हुआ था। परंतु उनके राम रामानंदी सगुण राम नहीं हैं। वह निर्गुण है। कबीरदास के इस निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के पीछे युग की ऐतिहासिक सीमाएँ ही जिम्मेवार थीं। कबीर के समय में जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद, मठवाद आदि समस्याएँ थीं। इन सब कुरीतियों का खामियाजा समाज के तथाकथित निम्न वर्ण को ही उठाना पड़ता था। इन तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों को साधना, पूजा-अर्चना का अधिकार नहीं होता था। और जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है तो सदैव देवालियों की आकांक्षा क्यों हो? इस अंतर्विरोध के कारण ही कबीर आदि अनेक तथाकथित निम्न वर्ण के कवियों ने अपने लिए निर्गुण उपासना का मार्ग चुना और उन प्रचलित धार्मिक मतों का खंडन किया, जिसने आदमी-आदमी में भेद बना रखा था। इससे निम्न वर्ण के लोगों को न केवल भक्ति का अधिकार प्राप्त हुआ, अपितु उनमें आत्म सम्मान का भाव भी जागा। इसे कबीर के प्रति बहुत सहानुभूति नहीं रखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी स्वीकारते हैं। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।" अर्थात् कबीर के राम पुराण प्रतिपादित राम नहीं थे। कबीर के राम ने न दशरथ के घर जन्म लिया और न ही रावण को मारा। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राम को दूर खोजने की जरूरत नहीं है। वह सारे शरीर में रम रहा है।

बोध प्रश्न

4. कबीर के राम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

5. 'निर्गुण' के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कबीर की निर्गुण भक्ति पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 कबीर की सामाजिक चेतना

कबीर सामाजिक धार्मिक दुरावस्था के काल में हुए थे। कबीरकालीन भारतीय समाज कई विरोधी विचार सरणियों, आग्रहों तथा उनके विरुद्ध संघर्षरत कई प्रकार की नई शक्तियों के कारण व्यापक उथल-पुथल का था। सामंतवाद अपने सभी आयामों संग (ब्राह्मणवाद, वर्णवाद,

जातिवाद आदि) मौजूद था, तो इसके विरुद्ध संघर्ष चेतना लेकर चले बौद्ध, जैन, शाक्त, सिद्ध और नाथ आदि भी थे। फिर इन धार्मिक सरणियों का स्खलित और भ्रष्ट रूप भी था। एक ओर उग्र इस्लाम तो दूसरी ओर सूफी तथा कबीर थे, जो समाज में अनेक स्तरों पर हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास कर रहे थे। इनके बीच सामान्य मनुष्य भी थे, जो धर्म के गैर मानवतावादी सरोकारों से भी जुड़े थे। जनता के धार्मिक जीवन में ईश्वर का अनुराग कम था, बाह्याडंबर ज्यादा थे। हर मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति थी। इसीलिए तत्कालीन समाज में सामाजिक सरोकार लुप्त थे।

कबीर मूलतः भक्त थे और भक्तिमार्ग यथार्थ रूप में मानवतावादी दृष्टिकोण से ही परिचालित होता है। संस्कृति की चाहे जितनी जटिल व्याख्या की जाए, परंतु परदुःखकातरता मनुष्य का प्रधान गुण स्वीकार किया जाता रहा है। कबीर कहते हैं :

कबीरा सोई पीर है जो जाने परपीर।

जो पीर न जानइ, सो काफिर बेपीर।।

इस परदुःखकातरता के कारण ही कबीर अपने अनुभूत सत्य को शास्त्र सम्मत सत्यों से अलगाते हैं :

तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होय रे।

मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।।

सत्य प्राप्ति की लालसा में कबीरदास ने पूर्ववर्ती समाज में बनी मनुष्य की पहचान की कसौटियों पर तीखा प्रहार किया है। तत्कालीन समाज में मनुष्य की पहचान के दो आधार

थे— एक धर्म और दूसरा जाति और वर्ण। इन पहचानों को कबीर खारिज करते हैं और कहते हैं :

हिंदू कहौ तो मैं नाहीं, मुसलमान भी नाहिं।

पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं।।

वे यह भी कहते हैं, 'हम वासी उस देस के जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।'

आलोचनात्मक चेतना और प्रश्नाकुलता कबीर की कविता की दो ऐसी बुनियादी विशेषताएँ हैं, जो सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों के प्रति और भी बलवती हो उठती हैं। ये विशेषताएँ ही कबीर को आज भी समाज में प्रासंगिक बनाए हुए हैं। इन दोनों विशेषताओं से समृद्ध उनकी दृष्टि समाज की प्रत्येक रूढ़ि, आडंबर को एक-एक कर तोड़ने की कोशिश करती है। वे हिंदुओं और मुसलमानों की तंगदिली पर प्रहार करते हैं। उनके बीच प्रचलित बाह्याडंबरों का प्रतिकार करते हैं। नमाज और मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं। समाज में प्रचलित अस्पृश्यता और छुआछूत का विरोध करते हैं :

जो तू बांभन बांभनी जाया, तौ आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।

जो तू तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।

कबीर वक्तव्य नहीं देते और न उपदेशक बनकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। उनके पास तर्क की भाषा है, जिसे वे संवेदना से संयोजित कर काव्यरूप देते हैं। इसी कारण उपर्युक्त कथनों जैसे तमाम कथन अक्खड़ होकर भी भौंडे नहीं हो जाते।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर के प्रति असहानुभूति प्रकट की है। परंतु इनके महत्व को स्वीकारा भी है, "मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे-से-ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।" कबीर का यह कार्य अद्वितीय है। कबीर ने जातिभेद और संप्रदायवाद को जड़ से समाप्त करने के लिए ही एक ईश्वर की अवधारणा पर बल दिया। परंतु कबीर के समय अनेक संप्रदाय और ईश्वरोपासना विधियाँ प्रचलित थीं। कबीरदास ने वेदपाठ, तीर्थस्थान, छुआछूत, अवतारोपासना आदि तमाम आडंबरों का विरोध किया।

समय से विक्षुब्ध कोई भी सार्थक कवि केवल खंडनात्मक या निषेधात्मक होकर लंबी यात्रा नहीं कर सकता। कबीर ने समय का इतना लंबा अंतराल तय किया है, क्योंकि इन निषेधों के बावजूद उनके पास एक वैकल्पिक संसार का स्वप्न मौजूद था। कबीर ने माया के माध्यम से सामंती देहवाद, इंद्रियासक्ति, अहंकार आदि का विरोध किया।

कबीर का विद्रोह मध्ययुगीन समाज के प्रति विक्षोभ-आक्रोश की उपज है। परंतु उनका एक अधिक गहरा संसार भी है, जहाँ वे दार्शनिक जैसी बातें करते हैं। कबीरदास का धर्म भक्ति और मार्ग प्रेम था। कबीर का दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य को अगर सुख प्राप्त हो सकता है तो केवल ईश्वर की भक्ति में और दूसरों के साथ रहकर सुख प्राप्त हो सकता है तो प्रेम के राज्य में। उन्होंने मतवादों, आडंबरों को त्यागकर अपने लिए यह मार्ग स्वीकार किया है :

निरवैरी निहकामता, साईं सेती नेह।

विषिया सँ न्यारा रहै, संतन का अंग एह ॥

कबीरदास ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा, उसमें मानवता की पुकार है, किसी धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं। कुछ आलोचकों ने उनकी प्रखरता को उनका दोष माना है। उन्हें सिर्फ समाज सुधारक बताया है। यह उनकी भावना के साथ पूरी तरह मेल नहीं खाता। कबीर मूलतः भक्त थे। परंतु कबीर तथा अन्य भक्तों की भक्ति पद्धति में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि अन्य भक्त कवियों ने जहाँ केवल भक्ति मार्ग का वर्णन किया, वहीं कबीरदास ने इसके अतिरिक्त इस मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों अर्थात् कुरीतियों, आडंबरों (जिसके कारण भक्त ईश्वर कृपा से वंचित रह जाता है) का भी वर्णन किया। यहीं भक्त कबीर मानवतावादी कबीर बन जाते हैं।

बोध प्रश्न

6. कबीर की सामाजिक चेतना के प्रमुख पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 कबीर की भाषा और काव्य सौंदर्य

कविता के द्वारा कविता से परे की वह विशिष्ट संवेदनशीलता जो संप्रेषित होती है, उसकी एक महत्वपूर्ण कुंजी है— कवियों की भाषा। फिर कबीर की भाषा की बात ही क्या! आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, “भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया.... बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा-फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।”

कबीर की भाषा जनता के बीच से निकली थी, जिसमें व्याकरण और शास्त्र का आग्रह नहीं था। भाषा की सार्थकता की बात वहाँ उठती है, जहाँ भाव कमजोर हों। जहाँ भाव एवं विचार श्रेष्ठ हों, वहाँ भाषा सिर्फ संप्रेषणीयता का मसला रह जाती है। कबीर ने भाषा जनता के बीच से उठाई और उसमें रहस्यात्मक प्रतीक इस प्रकार मढ़ दिए जैसे सुनार सोने में कील। उनकी भाषा में अभिव्यंजना का हर उतार-चढ़ाव मौजूद है। यहाँ तक कि उनके रहस्यवाद की तमाम उलझनें जिस स्तर पर सुलझती हैं, वह स्तर भाषा का ही है। जनता के बीच प्रचलित प्रतीक, रूपक और उपमानों को जगह देकर कबीर अपने पदों को जीवंत कर देते

हैं। यही वजह है कि जनता उनके प्रतीकों की दुर्बोधता के बीच भी बोध-भूमि तलाश लेती है:

आगि जू लागि नीर माहि, कांदो जरिया झारि।

उत्तर-दक्षिण के पंडिता मुए विचारी विचारी।।

विरह की आग जब मानस रूपी नीर में लगती है, तब उसमें निहित विषय-वासनाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं और उत्तर-दक्षिण के पंडित विचार करने पर भी इसका रहस्य नहीं समझ पाते। यहाँ कबीर ने आग, जल, कीचड़ आदि प्रतीकों के माध्यम से जिस कथन को संप्रेषित किया है, वह किसी साधारण जन के लिए भी दुर्बोध नहीं है। कबीर इस उलटबाँसी में असंगति अलंकार (पानी में आग लगना) की सहायता से विरहाग्नि के धधकने और उसमें वासनाओं के कीचड़ के जलने की गंभीर चर्चा करते हैं, परंतु जैसे ही मौका मिलता है, उत्तर-दक्षिण के पंडितों के बहाने धर्मशास्त्रज्ञों पर प्रहार भी करते हैं, जिनका ज्ञान केवल पोथियों तक सीमित है। यह कबीर के ही वश की बात थी कि उन्होंने ब्रह्म-मिलन के अनंत खेल को 'बेहदी मैदान में रहा कबीरा' से मूर्तिमान कर दिया।

कबीर रमता योगी थे। भाषा के टाट को उन्होंने जब चाहा ओढ़ा, जब चाहा फेंक दिया :

कहना था सो कह दिया, अब कछु कहना नाहिं।

एक रही दूजी भई, बैठा दरिया माहिं।।

कबीर की भाषा की अक्खड़ता ही उसका प्राण है। जब वे व्यंग्य पर उतर आते हैं, तब पंडित और मुल्ला, अवधूत और योगी सभी उनके बाणों से बिंध कर रह जाते हैं।

कबीर की कविताओं में साधारण जीवन का रस भरा हुआ है। यह श्रोता को सहज आकृष्ट करता है। उन्होंने अपने गुह्य कथनों के लिए रूपकों का सहारा लिया, उपमाएँ परिचित शब्दावलियों के बीच से लीं, पर उसमें गहन अर्थ की परतें हैं। संबंधों की दीवार भी उनकी माया के लिए रूकावट नहीं हैं :

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।

गले राम की जेवड़ी, जित खैचै तित जाऊँ।

यहाँ नाम के रूप में 'मुतिया' का प्रयोग अत्यंत सार्थक है। इसमें कुत्ते की सारी निरीहता हाथ बाँधे खड़ी हो जाती है। 'मुतिया' के रूप में वही कबीर हैं जो गगन गुफा का कोना-कोना झाँकते हैं, बड़े-बड़े अवधूतों को ललकारते हैं। यहाँ उनकी निरीहता, विश्वास परायण मनुष्य की निरीहता है। निष्ठावान व्यक्ति की विनम्रता है। कबीर की भाषा में लापरवाही, सजगता और आक्रमण तीनों गुण दिखाई देते हैं। आक्रमण की भाषा तो सिद्धों और योगियों की भी थी, पर उसमें वह आत्मविश्वास नहीं था, जो कबीर के पास था। कबीर दंभी नहीं थे, पर यदि उनमें दंभ जैसा कुछ दीखता है, तो वह दरअसल उनका अखंड आत्मविश्वास है :

कबीर माया पापिनीं फंद ले बैठी हाटि।

सब जग तो बन्दे परा, गया कबीरा काटि।।

उपर्युक्त विश्लेषण कबीर की भाषा संबंधी प्रवृत्ति और प्रकृति को स्पष्ट करता है। परंतु उनकी भाषा के संबंध में कुछ सूचनात्मक जानकारियाँ भी आवश्यक है। डा. श्यामसुंदर दास का मत है कि "कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है।" आचार्य

रामचंद्र शुक्ल का विचार था साखियों की 'भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत ऊपर बताया जा चुका है। निस्संदेह कबीर की भाषा मिश्रित भाषा थी। इसका कारण भी यही है कि इन्होंने लंबी यात्राएँ कीं। व्यापक सत्संग किया। साथ ही पूरब की बोली-बानी तो इनका व्यवहारगत संस्कार थी। अन्यथा इन्होंने किसी औपचारिक शिक्षा के माध्यम से अपनी भाषा का निर्माण तो नहीं किया है। इसी कारण इनकी रचनाओं में खड़ी बोली, पंजाबी और राजस्थानी का प्रचुर प्रभाव है। उदाहरण :

खड़ी बोली : तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ
बारी फेरी बलि गई, जित देखो तित तूँ।।

पंजाबी : अंखड़ियाँ झाँई पड़ी पंथ निहारि-निहारि

राजस्थानी : ना जाने कब मारसी

इस संदर्भ का विश्वनाथ त्रिपाठी ने उचित ही समाहार किया है, "कबीर की भाषा पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन दिनों कबीर रचना कर रहे थे उन दिनों आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का काव्य-भाषा के रूप में विभाजन आज जैसा स्पष्ट नहीं था। कबीर मूलतः संत थे। उनकी रचनाओं का उद्देश्य अपने विचारों और अपनी अंतर साधनात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना था।" इसीलिए प्रचलित भाषा

में कबीर ने रचना की। सम्प्रेषणीयता उनकी भाषा की अनिवार्य और संभवतः एक मात्र शर्त है।

उलटबाँसी

कबीर के काव्य रूपों पर विचार करते समय कबीर की उलटबाँसियों पर विचार करना भी आवश्यक है। अभिव्यक्ति की निरंतरता से शैली का जन्म होता है किंतु इसके उलट अर्थ को व्यवहृति न मिलने से शब्द प्रतीक बनते हैं। भाषा के इतिहास में प्रतीकों का अपना विशिष्ट स्थान है, परंतु यह बतलाना दुरूह कार्य है कि किस शब्द में प्रतीक शक्ति है। कोई भी शब्द प्रतीक बन सकता है। इसकी योग्यता प्रयोक्ता के हाथ होती है। 'उलटबाँसी' भारतीय चिंतन परंपरा का शब्द है। यह गूढ़ और रहस्यमयी बातों को चमत्कारिक ढंग से व्यक्त करने की शैली है। इस शैली का प्रयोग बौद्धों, नाथपंथियों में भी मिलता है। संभवतः उपनिषदों की कुछ उक्तियाँ भी इस श्रेणी में आती हैं।

कबीर की उलटबाँसियाँ उनकी प्रतीक योजना का अभिन्न अंग हैं। एक पद देखिए :

एक अचंभौ देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाइ ॥

पहिलै पूत पिछै भई माई, चेला कै गुर लागै पाई ।

जल की मछरी तरवरि ब्याई, कुता कौ लै गई बिलाई ।

बैलहि डारि गॉनि घरि आई, घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाइ ।

तलि करि साखा उपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल ।

कहै कबीर या पद कौं बुझै, ताकौं तीनिऊँ त्रिभुवन सूझै ।

अगर इसके सामान्य अर्थ पर विचार करेंगे तो हमारे हाथ शायद ही कुछ लगे। हमें इसका प्रतीकार्थ समझना होगा। सामान्य जीव इंद्रियों के वश में रहता है, पर सिद्धि प्राप्त होने पर इंद्रियाँ उसके वश में आ जाती हैं। पहले साधक होता है, फिर साधना होती है और शिष्य या साधक जब पूर्ण रूप से अंतर्मुखी हो जाता है, विषयों से विरक्त हो जाता है, तब अंतरात्मा इसे अपनी ओर आकृष्ट करता है। पहले साधक अंतरात्मा के साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील था, किंतु सिद्धि के निकट पहुँचने पर स्वयं अंतरात्मा उसकी ओर उन्मुख होता है। यही गुरु का शिष्य के पैर लगना है। वास्तव में यह सिद्धि की चरमावस्था को अभिव्यंजित करने के लिए रचा गया प्रतीक विधान है।

कबीर की अधिकांश उलटबाँसियाँ आध्यात्मिक-दार्शनिक उक्तियाँ हैं। इस शैली के कारण उनकी शुष्क और नीरस दार्शनिक उक्तियों में एक किस्म का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

बोध प्रश्न

7. उलटबाँसी क्या है? कबीर के काव्य से एक उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.7 कबीर के काव्य का वाचन और आस्वादन

काव्य का वाचन

देखिए— परिशिष्ट

काव्य का आस्वादन

- झीनी झीनी बीनी चदरिया // ...

संदर्भ

कबीरदास मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साहित्य के प्रमुख कवि हैं। यह पद जीवन की संभाव्यता, उसकी निर्मिति, ईश्वर और माया से उसके संबंध को प्रस्तावित करता है। इसमें इन तमाम संदर्भों को कबीर ने वस्त्र-निर्माण की प्रविधि के व्याज से बताया है तथा एक व्यापक रूपक का निर्माण किया है।

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि जिस चादर का निर्माण किया है, वह चादर 'झीनी झीनी' है। झीना होना चादर की जीर्णता, पुरानेपन का भी अर्थी है और उत्कृष्टता-श्रेष्ठता का भी। परंतु आखिरी पंक्ति में कबीरदास ने जिस आत्मविश्वास का परिचय दिया है, वह उत्कृष्टता-श्रेष्ठता का वाचक ज्यादा प्रतीत होता है। पुराने का संदर्भ उम्र की प्रौढ़ता से हो सकता। आगे कबीरदास पूछते हैं कि यह चादर किस ताने-बाने से निर्मित हुई है? किस तार या सूत से निर्मित हुई है? कबीरदास कहते हैं कि इंगला-पिंगला ताना बाना है और सुषमना तार से शरीर रूपी चादर का निर्माण हुआ है। अष्टचक्र दल चरखा है जिससे सूत का निर्माण होता है। पाँच तत्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) और तीन गुणों (सत्, रज, तम) से इस शरीर का निर्माण हुआ है। ईश्वर को शरीर रूपी कपड़े को सिलने में दस महीने लगते हैं। जैसे कुम्हार ठोक-ठोक कर घड़े का निर्माण करता है, वैसे ही ईश्वर ठोक-ठोक कर इस चादर का निर्माण करता है। ईश्वर द्वारा निर्मित शरीर रूपी इस चादर को सभी देवता, मनुष्य, ऋषि-मुनि ओढ़ते हैं, पहनते हैं। दार्शनिक धरातल पर जीव चूँकि ईश्वर का अंश है। अतः जीवात्मा भी परमात्मा की तरह ही पवित्र और निर्मल है। परंतु जीव जीवन क्रम में विभिन्न विषय-वासना, माया के अधीन जीवन जीता है। इस कारण वे इस ईश्वर प्रदत्त और ईश्वर अंश जीवात्मा को मैला कर देते हैं। वासनायुक्त कर देते हैं। कबीरदास कहते हैं कि ईश्वर के दास कबीर ने इस शरीर और आत्मा को बहुत संयम और साधना से ओढ़ा है। इस साधना और संयम के कारण ही ईश्वर ने इस शरीर को जैसा पवित्र और निर्मल बनाया था, उसे वैसा ही रखा है।

विशेष

- (i) इस पद में कबीर ने अपने दैनंदिन जीवन के अनुभव, उसकी शब्दावली से रूपक का निर्माण किया है। इसका लक्ष्यार्थ निश्चितरूपेण वह निर्गुण ईश्वर ही है, जो कबीर का आराध्य है, परंतु इस पद में जिस आत्मविश्वास का प्रसार हुआ है, वह भाषा में उनके अनुभव के ढल जाने की क्षमता के कारण ही।
- (ii) कबीरदास की आराधना में सारे मत-मतांतरों की शब्दावली, उनकी आचार-व्यवहार नीति दिखाई पड़ती है। इस पद में योग की शब्दावली का व्यवहार हुआ है।

- कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउ। ...

संदर्भ

व्याख्येय साखी मध्ययुगीन निर्गुण भक्ति शाखा के सर्वप्रमुख कवि कबीरदास द्वारा रचित है। उनकी यह साखी 'निहकर्मि पवित्रता को अंग' में है। इसमें भक्ति की एकनिष्ठता रेखांकित की गई है।

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूँ। कुत्ता कहकर वह दासत्व भाव प्रदर्शित करते हैं। मेरा नाम मुतिया है। मुतिया शब्द बहुत व्यंजक है। इस शब्द की व्यंजना के कारण एक भक्त की सारी निरीहता हाथ जोड़े सम्मुख हो जाती है। इस निरीहता की ही व्यंजना अगली पंक्ति में है। मेरा गले में राम नाम की रस्सी है। वह अर्थात् राम, मेरे स्वामी जिधर खींचते हैं मैं उधर हो जाता हूँ। अर्थात् मैंने उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर दिया है। उनकी जैसी इच्छा होती है, मैं वैसा ही करता हूँ।

विशेष

(i) यह एक 'साखी' है। साखी शब्द 'साक्षी' से बना है अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कबीर ने जो द्विपदी में लिखें, वे साखी कहलाए। यह साखी एक विशेष मनःस्थिति को दर्शाती है। पूर्ण समर्पण की मनःस्थिति को, जो जीवन का मनोवैज्ञानिक सत्य है। अन्यथा कबीर जैसा अक्खड़ ऐसा समर्पण कम ही करता है।

(ii) 'राम' शब्द कबीर की कविता में निर्गुण राम के लिए आता है। सगुण राम के लिए नहीं। कबीर ने अन्यत्र लिखा भी है :

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।

कबीर के लिए राम का मर्म ही काम का है।

(iii) 'मुतिया' शब्द से भाषा की व्यंजकता में वृद्धि होती है।

- पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। ...

व्याख्या

परब्रह्म के तेज का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान तो भौतिक संदर्भ है। परंतु ब्रह्म तो समस्त लौकिकता का अतिक्रमण करता है। उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है। उस अनिर्वचनीय निर्गुण ब्रह्म के बखान में भाषा और तमाम भौतिक साधन, जिनसे उस शोभा को प्रत्यक्ष कराया जा सकता है, अक्षम हैं। इसीलिए उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा

सकता। चूँकि उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है, इसीलिए उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

- ग्यांन प्रकासी गुर मिला, सो जिनि बीजरि जाइ। ...

व्याख्या

यह साखी 'गुरुदेव को अंग' से लिया गया है।

जब गुरु मिला तब ज्ञान प्रकाशित हो गया। अब यही प्रयत्न है कि जिस गुरु से ज्ञान मिला है, वह किसी भाँति बिसर न जाए। जब गोबिंद ने कृपा की, तब गुरु का साथ मिला।

टिप्पणी

“सो सर्वनाम गुरु और ज्ञान दोनों के लिए हो सकता है। प्रस्तुत साखी 'गुरुदेव को अंग' के अंतर्गत है, जिसमें गुरु की महिमा का विशेष रूप से वर्णन है। इसीलिए 'सो' को गुरु के लिए ही लेना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।”—जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह

- दुलहिनीं गावहु मंगलचार। ...

व्याख्या

हे दुलहिन! मंगलाचार गाइए, क्योंकि राजाराम मेरे घर बारात लेकर आए हैं। कबीरदास ने इस पद में एक स्त्री (कुँआरी) के रूप में ईश्वर की आराधना की है। कबीरदास के समग्र साहित्य को देखने से यह बहुत स्पष्ट है कि ईश्वर की उन्होंने अनेक रूपों में आराधना की है। बारात में स्वयं दुलहन तो गाती नहीं। पर इस पद में कबीर रूपी दुलहन गाती है। साथ

ही और अन्य भक्तों का आवाहन करती भी प्रतीत होती है। ऐसा इसलिए संभव हुआ, क्योंकि भावना के क्षेत्र की नियमावलियाँ सामान्य सांसारिक नियमावलियों से भिन्न होती है। साधक कबीरदास कहते हैं कि मैंने तन-मन दोनों राम में अनुरक्त किया है। बारात में पाँच तत्व (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द) आए हैं। मेरे पाहुने राम आए हैं और मैं मत्त यौवना उनका स्वागत करती हूँ। मनोवैज्ञानिक समझ में यह उल्लास का अतिरेक है। मनोवैज्ञानिक रूप से, ऐसे में उल्लास और बढ़ जाता है। मैं अपने शरीर रूपी तालाब को बेदी बनाऊँगी और ब्रह्म मंत्रोच्चार करूँगी। मैं अपने स्वामी राम के साथ शादी के फेरे लूँगी— ऐसा करते हुए मैं धन्य महसूस करूँगी। इस बारात को देखने के लिए तैंतीस कोटि देवता और अट्ठासी हजार मुनि उपस्थित हैं। कबीरदास कहते हैं एकमात्र अविनासी पुरुष अर्थात् ईश्वर से मैंने विवाह किया है।

यह पद भी रूपक का एक अच्छा उदाहरण है।

- हरि जननी मैं बालक तोरा। ...

व्याख्या

इस पद में कबीर ने ईश्वर को अपना अभिभावक तथा स्वयं को उसकी संतान मानते हुए अपनी भक्ति निवेदित की है। वे कहते हैं कि हे प्रभु तुम मेरी माँ और मैं तुम्हारे पुत्र के समान हूँ। मुझमें बुराइयाँ हैं, पर तुम मुझे क्षमा कर दो। पुत्र अनेक अपराध करता है पर माँ उस पर ध्यान नहीं देती। बच्चा माँ के बाल को पकड़कर उसे परेशान करता है, माँ फिर भी उस पर अपना स्नेह कम नहीं करती। कबीर बुद्धिपूर्वक विचार कर कहते हैं कि पुत्र के दुखी होने पर माँ भी दुखी रहती है। अर्थात् भक्त पर भगवान का सदा स्नेह बना रहता है।

- हम न मरें मरिहै संसारा । ...

व्याख्या

इस पद में कबीर ईश्वर से साक्षात्कार हो जाने के बाद की अपनी भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि सांसारिकता में फँसे लोगों की मृत्यु होगी, ईश्वर से साक्षात्कार के बाद उन्हें (कबीर को) अमरत्व प्राप्त हो गया है। शाक्त अर्थात् शक्ति के उपासक मरेंगे पर राम नाम का रसायन पीने वाले भक्त बचे रहेंगे। प्रभु की मृत्यु होगी तो मेरी भी मृत्यु होगी, प्रभु की मृत्यु नहीं होगी तो मेरी मृत्यु क्यों होगी? इसका अभिप्राय यह है कि भक्त का प्रभु से तादात्म्य हो गया है। अब वह उससे पृथक नहीं है। अब उसकी गति प्रभु के समान है। प्रभु जन्म-मृत्यु से परे हैं। उनकी मृत्यु नहीं होती; अतः प्रभु का साक्षात्कार कर चुका भक्त भी इस बंधन से मुक्त हो गया है। कबीर कहते हैं कि उन्होंने अपना मन प्रभु के मन से मिला दिया है और अमर होकर सुख के सागर को पा लिया है।

- तब नहीं होते पवन न पांनी । तब नहीं होती सिस्टि उपांनी । ...

व्याख्या

कबीर ब्रह्म के अनादि (नित्य) रूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जब सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हुई थी; हवा और पानी का अस्तित्व नहीं था; जब कोई घर और शरीर नहीं था; पृथ्वी और आकाश भी नहीं था; गर्भ, पौधे की जड़, कली और फूल भी नहीं था; न शब्द बने थे, न स्वाद का अस्तित्व था; विद्या, वेद, गुरु, चेला कुछ भी नहीं था तब भी वह अगम ब्रह्म मौजूद था। कबीर कहते हैं उस अज्ञात (अविनाशी) के बारे में, जो बुद्धि की पहुँच से बाहर

है, जिसका न कोई गाँव है न कोई ठिकाना, जो गुण रहित अर्थात् निर्गुण है उसका वर्णन किस नाम से करूँ?

- संत न छाड़ै संतई, जौ कोटिक मिलहिं असंत। ...

व्याख्या

‘साध साखीभूत कौ अंग’ में शामिल इस साखी में कबीर संत के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि संत अगर करोड़ों असंतों (दुष्टात्मा) के बीच हो तो भी अपनी संत-वृत्ति को नहीं छोड़ता जैसे कि चंदन के वृक्ष में साँप लिपटा रहता है, पर वह अपनी शीतलता का त्याग नहीं करता।

- हिंदू मुआ राम कहि, मुसलमान खुदाइ। ...

व्याख्या

‘मधि कौ अंग’ में शामिल इस साखी में कबीर कहते हैं कि हिंदू और मुसलमान अपनी-अपनी श्रेष्ठता बताते हुए क्रमशः राम और खुदा कहते-कहते मर गए। कबीर कहते हैं कि वह जीवित है जो दो के भेद में नहीं पड़ता अर्थात् जो किसी प्रकार की धार्मिक संकीर्णता से परे है।

3.8 सारांश

- कबीर हिंदी के उन प्रारंभिक कवियों में है जिन्होंने भक्ति को अधिकार के रूप में देखा तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को गंभीर चुनौती दी।
- अकखड़ता उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा थी। संकीर्णता और रुढ़ियों के प्रतिकार के क्रम में उनके व्यक्तित्व का यह पहलू सामने आता है।

- कबीर के जन्म तथा मृत्यु के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यह माना गया है कि पंद्रहवीं शताब्दी में वे विद्यमान थे।
- कबीर के ग्रंथों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। उनकी रचनाएँ बीजक नाम से संगृहीत हुईं।
- कबीर के काव्य को तीन भागों – साखी, सबद और रमैनी में बाँटा गया है।
- कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनकी साधना पद्धति निर्गुण का अभिप्राय गुण रहित होना है। उन्होंने अपने ब्रह्म के लिए राम संज्ञा का इस्तेमाल किया है परंतु उसे सगुण अवतारी राम से अलगाया है।
- कबीर की साधना में रहस्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है।
- कबीर की साधना पद्धति पर अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद आदि विभिन्न पंथों का प्रभाव है।
- कबीर प्रखर सामाजिक चेतना के भक्त कवि थे। उन्होंने वर्णवाद, जातिवाद, धार्मिक संकीर्णता पर निरंतर प्रहार किया। उन्होंने हर तरह की रूढ़ियों को त्यागकर योग और प्रेम के मार्ग की प्रस्तावना की।
- कबीर की भाषा का कोई एक रूप नहीं मिलता। खड़ी बोली, ब्रजभाषा, पंजाबी, राजस्थानी आदि विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों का मिला-जुला रूप कबीर की अभिव्यक्तियों में पाया जाता है। उन्होंने अपनी साधनात्मक अनुभूति के लिए उलटबाँसी का भी प्रयोग किया।

3.9 शब्दावली

निनाद – गुंजार

अद्वैतवाद – अद्वैतवाद दर्शन की वह शाखा है जो सिर्फ ब्रह्म की सत्ता में विश्वास करती है। वह जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं करती। जो अंतर दिखाई देता है वह मायाजनित भ्रम है।

समाधि – योग तपस्या आदि का अंतिम चरण जब मन की चंचलता का शमन हो जाता है तथा वह ब्रह्म पर पूर्णतः केंद्रित हो जाता है।

3.10 उपयोगी पुस्तकें

- *कबीरदास* – हजारी प्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *कबीर* – विजयेंद्र स्नातक; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *अकथ कहानी प्रेम की* – पुरुषोत्तम अग्रवाल; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *कबीर साहित्य की परख* – परशुराम चतुर्वेदी; भारती भंडार, इलाहाबाद।

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) – (ii)

(ख) – (i)

(ग) – (iv)

(घ) – (iii)

2. देखिए— भाग 3.2

3. (क) डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को लोकजागरण की संज्ञा दी है।

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति को धर्म का रसात्मक रूप कहा है।

(ग) कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा में एकत्व का संबंध माना है।

(घ) डॉ. रामकुमार वर्मा ने अद्वैत को रहस्यवाद का प्राण माना है।

4. देखिए— भाग 3.4

5. देखिए— भाग 3.4

6. देखिए— भाग 3.5

7. देखिए— भाग 3.6



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY